जय हनुमान

(आर्य संस्कृति का आदर्श काव्य)

कवि

श्री श्यामनारायण पाण्डेय

—:०:—
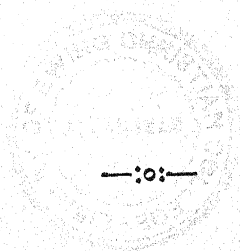
प्रकाशक

रामनारायण लाल

प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता

प्रयाग

रामदूत को प्रणाम !

प्रगति पराक्रम और पौरुष के प्रचण्ड रूप
विद्या के कला के मूर्त्त
मूर्तिमान ब्रह्मचर्य
धर्मशील, न्यायशील, शौर्यशील, दौत्य-कर्म-मर्मशील
संस्कृत के
संस्कृति के
ह्रस्व दीर्घ झंकृति के
भीतिहीन हुंकृति के
दीप्तिमान देवता
वायु पुत्र को प्रणाम
रामदूत को प्रणाम।
आञ्जनेय को प्रणाम।
जिसके स्मरण मात्र से विपन्न मानव को
मिलती महान शक्ति, ज्ञान, भक्ति, जग-विरक्ति
काल को निगलने का
विघ्न को कुचलने का
शत्रु-व्यूह दलने का
अप्रमेय साहस, उत्साह ओज, धीरता
उस अजेय जेता के
कपि-कुल-नेता के
वन्दनीय
वज्र-सम चरणों में
शत बार वन्दन
सहस्र बार वन्दन
असंख्य बार वन्दन।
जिसने गरजते अलंघ्य जीव-जन्तु मय

भीषण तरंगों के समन्वित
अगाध-जल
हिन्द महासागर के गौरव को नष्ट किया
वारिधि को पार कर
और उस पार जा
देववन्द्य राम की पदारविन्द-योगिनी
पीड़िता वियोगिनी
आवृता निशाचरों से
श्वानों के बीच हरिणी सी भय विह्वला
सीता के अर्चनीय चरणों के दर्शन से
पावन हो
सावन हो
ढर-ढर अश्रु के निपात से
असहनीय दुःख-जन्य क्रोध से प्रमत्त हो
विराट, भीमकाय हो
मूर्तिमान पावक प्रचण्डता-निकाय हो
नागिन सी पुच्छ के प्रचण्ड वह्नि-ज्वाल से
घूम-घूम
फूक दिया लंका को
झूम-झूम
घास फूस की तरह
डङ्का की चोट पर गा-गा के रामकीर्ति
जल गया रावण का
स्वत्व ज्ञान
आन-बान
स्वाभिमान

खोर-खोर बह गयी लंका की रत्न-राशि
उस अदम्य तेज मूर्त्ति
बल-स्फूर्ति के निधान
जगद्वन्द्य
हनूमान के बलिष्ठ चरणों में
नमस्कार
चरणों के रजकण में
नमस्कार
नमस्कार।

केले के निकुंज में
मदान्ध गज के समान
गर्वशील दनुजों की
शौर्य-शक्ति रौंद कर
खोयी हुयी सीता का बताया पता राघव को
परम प्रसन्न हो, कृतज्ञ हो, ऋणी हो जिसे
दौड़ के लगाया कण्ठ
आँखें भर राम ने
गूँजा प्रवर्षण गिरि
बार-बार घोष से
जय हनुमान, जय जय हनुमान के
वह रामभक्त हनुमान
छन्द-छन्द के
अर्घ्य-पाद्य-फूल लें
सहर्ष आशीर्वाद दें।
वीर हनुमान से

अनेक बार याचना
बार-बार प्रार्थना
कि
मानव-समाज की अनीतियों को दूर कर
सफल बनाये
जन-जीवन जगाये
देश-जाति को उठाये
नित
'जय हनुमान'
यह ।

शम्भू

मंगल-भवन गणाधिप के
चरणों में मस्तक झुकता है
सबसे दूर खड़ा हूँ, मन
वन्दन करने को रुकता है

श्री गणेश का नाम लिया
तो बाधा फटक न पाती है
देवों का वरदान बरसता
बुद्धि विमल बन जाती है

यह लो, वाणी के मन्दिर में
आया विनत मनाने को
हंस—वाहिनी के चरणों में
अपने भाव जगाने को

शब्द—शब्द के फूल अर्थ के
सौरभ से अर्चन होगा
रस की यजन—आरती से
आह्लादित माँ का मन होगा

मैं कुपुत्र हूँ भले मगर
जननी का स्नेह रसीला है
कहीं उड़ूँ, माँ के प्रसाद से
मेरा बन्धन ढीला है

अगर कहीं भटकूँगा तो
माँ हंस लिये मिल जायेगी
फिर क्या कहना है, प्रबन्ध में
काव्य-कला खिल जायेगी

माँ मैं तेरी अनुकम्पा का
दीन भिखारी भारी हूँ
अपना ही पथ सूझ न पड़ता
इतना निपट अनारी हूँ

माँ, मैं तेरे पाँव पड़ूँ, तू
मुझको तजकर जा न कहीं
बीन बजे मेरे अन्तर में
आसन और लगा न कहीं

एक—एक झंकृति से छर—छर
रस की बूँदें छहर उठें
भाव-कल्पनाओं की लहरें
जन-मन-मन में लहर उठें

कविगोष्ठी विद्वत्समाज में
मुझ ंचल को छोड़ न माँ
उँगली धर ले खो जाऊँगा
पल अंचल को छोड़ न माँ

—:०:—

प्रथम सर्ग

राम रमापति के चरणों की
रज का शिर पर तिलक लगा
श्रद्धा से भरकर पर डर डर
राम—भक्त को रहा जगा

उठो केसरीनन्दन तुम
अपने प्रबन्ध में भाव भरो
लिखूँ तुम्हारी कार्य दक्षता
मुझमें ऐसा चाव भरो

लिया तुम्हारा नाम कहीं तो
भूत-प्रेत का डर क्या है
इष्ट भक्त तो एक वस्तु है
दोनों में अन्तर क्या है

तुमने रामायण लिखवायी
तुलसी को सम्मान दिया
कवि के मन-मन्दिर में बसकर
राम-भक्ति का दान दिया

उसी कृपा की भीख माँगता
मत मुझको बहलाओ तुम
एक बार वर्णित चरित्र को
फिर मुझसे दुहराओ तुम

इष्टदेव, कुलदेव, ग्राम के
देव, नमन स्वीकार करो
स्थान देव, औ वास्तुदेव,
पैरों पर हूँ कुछ प्यार करो

पाठक, पढ़ो कपीश कहानी
पाप-ताप रहने वाली
अन्तर में कर्त्तव्य—शीलता
भाव-भक्ति भरने वाली

जाम्बवन्त मारुति से बोले
क्यों चुप हो कुछ बोलो तो
सोच रहे हो क्या मन ही मन
हिलो-हिलो कुछ डोलो तो

तुम तो संस्कृत के अधिकारी
प्रभु—रहस्य के ज्ञाता हो
सर्व शास्त्र—निष्णात साथ ही
मन्त्रों के निर्माता हो

वेद-विहित व्याकरण-शुद्ध
रस—भरी तुम्हारी वाणी है
ह्रस्व—दीर्घ—झंकृत उच्चारण
कथन-शक्ति कल्याणी है

गरुड़-पंख में जो बल है
वह बल है पुष्ट भुजाओं में
पवन देव के सदृश वेग है
कठिन तुम्हारे पाँवों में

यह समुद्र क्या शैशव में ही
सूर्य—लोक हो आये हो
इन्द्र—वज्र सह लिया मगर
यह अपनी हनु खो आये हो

वामन-सदृश त्रिलोक नाप
सकते हो यदि तुम चाहो तो
धरा उठाकर उड़ सकते हो
अपनी शक्ति जगाओ तो

उठो गरजते सिन्धु लाँघ कर
हम सब का उद्धार करो
जगदम्बा का पता लगाकर
रघुकुल का उपकार कर

स्तूयमान हनुमान गरजकर
उठे रोम भरभरा उठे
कपि-गर्जन के भीम नाद से
गिरि-कानन हरहरा उठे

किया गात विस्तार सिंह सम
बारंबार जँभाई ली
तैर गया लोहू आँखों में
गरज-गरज अँगड़ाई ली

झुके बड़े बूढ़ों के सम्मुख
पंचदेव को कर जोड़ा
पिता वायु को नमस्कार कर
लंका का अन्तर जोड़ा

एक बार हुंकार किया फिर
वातावरण कराह उठा
वीर वानर का समूह मिल
वाह-वाह कर वाह उठा

सिंह—सदृश उछले महेन्द्र गिरि
पर धमके बजरंगबली
अचल हिला तो फूल विटप के
बिखर गये गिरि गली—गली

अद्रिकम्प से टूट टूटकर
बड़े बड़े पाषाण गिरे
पिसे बापुरे वन्य जीव
मानो लक्ष्मण के बाण गिरे

दंश मारने लगे विषैले
विषधर गिरि—चट्टानों को
चटक चटक चट्टानें टूटीं
तो भय हुआ महानों को

पवन—तनय पर्वत पर पिङ्गल
बलीवर्द सम खड़े हुए
तेजस्वी तन—रूप देखकर
वानर हर्षित बड़े हुए

हनूमान किलकिला गरजकर
चकित वानरों से बोले
एक एक हुंकार घोष पर
पर्वत के कण कण डोले

जाम्बवन्त ओ अंगदादि सब
स्वस्थ—चित्त हो जाओ अब
वैदेही—पद देख तुरत
लौटूँगा मंगल गाओ अब

वीर वानरों, करो प्रतीक्षा
राम—बाण बन जाऊँगा
जगदम्बा का समाचार
आनन-फानन में लाऊँगा

अग्निशिखा बलवान वायु की
जहाँ प्रगति रुक जाती है
मेरी प्रगति वहाँ भी है
बाधा मुझसे झुक जाती है

कौन जलधि तैरे मैं तो
नभ के पथ से ही जाऊँगा
गति उड़ान से नभ—चारी
जीवों को भी दहलाऊँगा

इन्द्र—हाथ से सुधा छीन कर
अभी कहो तो लाऊँ मैं
देख रहा हूँ जगदम्बा को
बोलो तो उड़ जाऊँ मैं

सब की सम्मति हो तो मैं
लङ्का को यहीं उठा लाऊँ
और नहीं तो आज्ञा दें
लङ्का में आग लगा आऊँ

उड़ा दृश्य देखो दुनिया का
यह आश्चर्य निराला है
सूर्य—रश्मि की तरह चला, मन
आतुर है मतवाला है

यह कह कर गरजे, नागिन सी
पूँछ उछाली अम्बर में
भाववेग से तन झकझोरा
उठीं तरंगें अन्तर में

लगे गरजने बारबार, गिरि
हिला, निवासी काँप उठे
एक साथ ही मृत्यु आ गई
सबकी, सब जन भाँप उठे

मारुति ने अब परिघ भुजाओं
को पर्वत पर अड़ा दिया
अपने बलशाली पावों को
अचल—शीश पर गड़ा दिया

तन समेट कर बड़े वेग से
उछले सबको दहलाते
हनूमान सच गरुड़ बन गये
उड़े गगन में लहराते

उनके साथ उड़े तरु गिरि के
तीव्र वेग को सह न सके
चले पाहुने को पहुँचाने
पर्वत पर थिर रह न सके

फूल गिरे सागर में तो वह
निशि—नभ सा छविमान हुआ
क्षणिक सिन्धु को फूलों के
गहनों का भी अभिमान हुआ

नील गगन में इन्द्र—ध्वजा सी
लम्बी पूँछ फहरती थी
अगल बगल से हवा निकल कर
बादल सदृश गरजती थी

कठिन वेग से खींच बादलों
को नभ में छितराते थे
बड़ी-बड़ी लहरें उठतीं
हनुमान गरजते जाते थे

छाया जल पर वायु वेग से
धावित नौका सी चलती
जिधर—जिधर छाया चलती थी
उधर—उधर हलचल मचती

हनूमान का श्रम हरने
मैनाक जलधि—ऊपर आया
छूकर उसे और ऊपर उड़ने
में कौशल दिखलाया

राम-कार्य में लगे भक्त को
था असह्य रुकना क्षण भर
महावीर की भक्ति देखकर
नभ से फूल झरे झर-झर

चली देव—प्रेरित सुरसा फिर
राह रोक कर खड़ी हुई
बोली, खाद्य—प्रतीक्षा में हूँ
यहीं युगों से अड़ी हुई

भूख लगी है तुमको खाकर
अपनी भूख बुझाऊँगी
मधुर खाद्य बनकर आये तुम
ठहरो, भोग लगाऊँगी

हनूमान सुरसा से बोले
माँ, क्षण करो प्रतीक्षा तुम
राम—कार्य मैं कर आऊँ
दो अल्प समय की भिक्षा तुम

राम लोक-प्रिय साधु यशस्वी
नामी महिमावानों में
साधु—कार्य में बाधक की
निन्दा होती विद्वानों में

न न न न मैं कुछ नहीं मानती
कह उसने मुँह फैलाया
कामरूप का ध्यान कौतुकी
मारुति को भी हो आया

जैसे जैसे बदन बढ़ा वैसे
वैसे कपि देह बढ़ी
हनूमान के अंग—अंग पर
एक भयङ्कर ज्योति चढ़ी

नरक—द्वार की तरह भयावह
जब सुरसा का बदन हुआ
एक होठ पानी में पैठा
और दूसरा गगन छुआ

तब लघु—तन बन गये पवनसुत
मन में कुछ कलबल आये
मुँह में घुसकर कर्णरन्ध्र से
बाहर तुरत निकल आये

और प्रणाम किया सुरसा को
वह भी बहुत प्रसन्न हुई
आशीर्वाद दिया लेकिन वह
बहुत—बहुत अवसन्न हुई

पुनः चले आकाश तैरते
विद्युतगति से कपि नाहर
विस्मित देव उड़ान देखते
निकल—निकल घर से बाहर

अभी न दूर गये थे तब तक
पड़ी सिंहिका मतवाली
नभचारी जीवों की छाया
झपट पकड़ लेने वाली

उसने उड़ते मारुति की भी
परछाईं को पकड़ लिया
खा जाने को मुँह बाया
दोनों हाथों से जकड़ लिया

उल्टी प्रखर हवा बहने से
नौका की जो गति होती
महुअर के मोहक निनाद से
अहि की जो दुर्गति होती

वही हुई गति हनूमान की
एक हाथ भी बढ़ न सके
लौह शृंखला में जकड़े
मदमस्त करी सम कढ़ न सके

तभी गरजती हुई सिंहिका
सागर के ऊपर उछली
देख राक्षसी का दुःसाहस
क्रुद्ध हुए बजरंगबली

मुँह में घुसकर तीक्ष्ण नखों से
पेट कररकर चीर दिया
और अगम सागर के जल में
उसका फेंक शरीर दिया

बिना रुके रघुनाथकार्य के
लिये पुनः ऊपर उछले
नभ को अपनी ओर खींचते
पक्षिराज की तरह चले

फूलों की वर्षा की, सब
देवों ने आशीर्वाद दिया
मार सिंहिका को तुमने
हम सब के हित का कार्य किया

होगा सिद्ध अभीष्ट तुम्हारा
जाओ पथ मंगलमय हो
रावण—पालित लंका में
हुँकार तुम्हारा निर्भय हो

विघ्न ठेलते धमक गये
हनुमान लक्ष्य की छाती पर
लघु तन किया कि भेद प्रगट हो
कहीं न सुर-नर-घाती पर

लंका के रक्षक पर्वत के
एक शिखर के वृक्ष तले
भले सोचकर विधि प्रवेश की
सावधान हनुमान चले

—:o:—

द्वितीय सर्ग
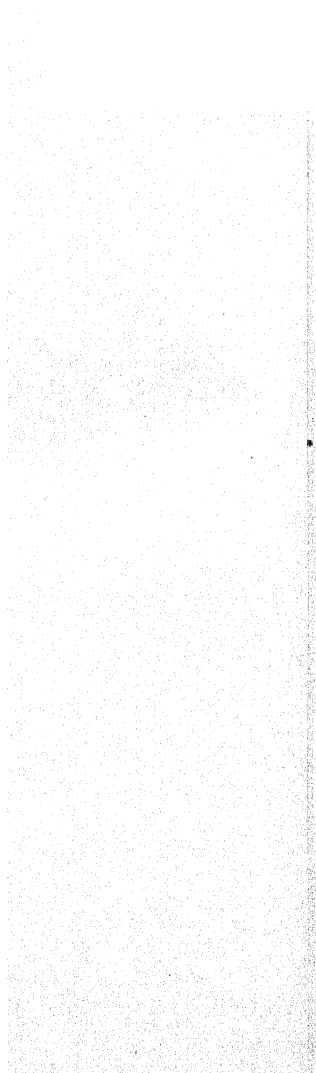
ओ निडर चपल बन्दर तू
निर्भीक कहाँ जाता है
खग भी न जहाँ उड़ते हैं
तू मूर्ख वहाँ जाता है

तू नहीं जानता पागल
यह स्वर्णपुरी लंका है
इसके प्रताप का दिशि—दिशि
वजता रहता डंका है

जैसे अपने गह्वर की
रक्षा करते विष-धर हैं
रक्षित लंका है
प्रहरी सब बलवत्तर हैं

रुक, रुक मत आगे बढ़ रे
कुछ भेद लिये जाता है
कहना न मानता अब भी
अपमान किये जाता है

साकार ढीठ लंका ने
कपि—पुंगव को ललकारा
कानों के पास भयंकर
खिझिला कर थप्पड़ मारा

हनुमान सँभल कर बोले
उसकी वह देख ढिठाई
अपने हाथों से तू ने
अपनी ही मौत बुलाई

तो मुझसे भी कुछ ले ले
कह कपि ने झापड़ मारा
वह गिरी धरा पर मुँह से
बह चली रक्त की धारा

तत्क्षण कराहती बोली
मैं समझ गयी तू क्या है
यह भी न भेद बाकी है
तू कौन कहाँ आया है

मैं लंकापुरी स्वयं हूँ
मुझसे कुछ छिपा नहीं है
आ गया काल रावण का
देवों की कृपा नहीं है

विधि से मैं जान चुकी हूँ
सीता का हरण नहीं है
संहार राक्षसों का है
कल उन्हें न शरण कहीं है

अब जा लंका में घुस जा
मन चाहे तो कुछ कर जा
अपनी इच्छा पूरी कर
सौ योजन सिन्धु उतर जा

सीता अशोक वन में हैं
तरु—तले पड़ी छाया सी
मेधा सी मोह—निमग्ना
आपत्ति—भरी माया सी

लंका की बातें सुनकर
कपि नाहर हर्षाकुल थे
गतिमान हुये सीता के
दर्शन के हित व्याकुल थे

प्राचीर—शिखर पर उछले
फिर कूदे कनक—नगर में
घूमे हनुमान सजग हो
बाहर—भीतर घर-घर में

सागर में प्रतिविम्बित थीं
लंका की उच्च अटाएँ
हनुमान देख विस्मित थे
आँगन की स्फटिक—छटाएँ

मणि-खचित खिड़कियों से थी
सागर की हवा झुरुकती
गृह तरुणी—छवि—दर्शन के
हित चारु चाँदनी रुकती

वैदूर्य—वेदिका शोभित
सोने के द्वार कहीं थे
लटके कलधौत गृहों में
मोती के हार कहीं थे

चुप चाप कहीं पर कोई
मन्त्रों का जप करता था
कोई था वेद पढ़ाता
तो कोई तप करता था

था कहीं शास्त्र चिन्तन तो
कोई था शिव वन्दन में
थी कहीं प्रार्थना होती
तो कोई लीन हवन में

चन्दन - माला - समलंकृत
कोई रमणी—छवि—रत था
कोई हँसता गाता तो
कोई संगीत—निरत था

झंकार कहीं शस्त्रों की
हुंकार कहीं वीरों का
सुन—सुन हनुमान चकित थे
फुंकार समर धीरों का

बलवती निशाचर—सेना
आदेश प्रतीक्षा में थी
पथि गुप्तचरों की टोली
जन—बुद्धि—परीक्षा में थी

हनुमान बढ़े आगे तो
सम्मुख कैलाश खड़ा था
लेकिन उसपर तो मुक्ता
मणियों का ढेर जड़ा था

वह अलङ्कार लंका का
रावण—प्रासाद चमकता
दशशीश—तेज से मिलकर
दिशि—दिशि वह और दमकता

हनुमान डरे पर कूदे
आँगन में कुछ आशा से
रघुकुल की श्री सीता के
दर्शन की अभिलाषा से

बलिवर्द सदृश गो दल में
तारों के साथ सुधाकर
आँगन में घूम रहा था
निश्चिन्त गगन से आकर

मणि चकाचौंध में पड़ कर
चकमका गईं कपि—आँखें
पुष्पक—विमान सम्मुख था
उड्डीयमान थीं पाँखें

कटिबद्ध प्रहरियों से वह
रक्षित प्रासाद निडर था
पोषित पशु—पक्षी—रव से
वह राज-भवन सस्वर था

गर्वीली सुन्दरियों के
मधु गीतों से झंकृत था
मुखरित कांचन—मदिरालय
माणिक पुखराज-खचित था

रावण के राजभवन को
जितना वैभव का बल था
उतना तो रत्नाकर भी
रत्नों से नहीं प्रबल था

प्राचीर - समावृत अगणित
रावण के सजे सदन थे
जिनमें प्रकाश मणियों के
जिनमें बहुमूल्य रतन थे

हनुमान देख लंका-श्री
विस्मय—सागर में डूबे
पर यह गृहीत पर—धन है
यह सोच घृणा से ऊबे

उछले पुर-पथ पर आये
पहुँचे अशोक तरु-वन में
जगदम्बा—पद—दर्शन की
भारी श्रद्धा रख मन में

कुछ दूरी पर तरु-नीचे
नि:शंक किसी को घेरे
कुछ क्रूर नारियाँ बैठीं
चल रहे यत्न बहुतेरे

धीरे—धीरे कपि जाकर
चढ़ गये विटप पर सत्वर
सब दृश्य सामने आया
जब लगे देखने झुक कर

घन—धूम—राशि से आवृत
अग्नि—ज्वाला सी सीता
भू—पर बैठी थीं, कपि की
तप-सिद्धि—समान पुनीता

कपि ने सीता को देखा
जल—कमल—हीन वापी सी
कृशिता—उच्छ्वसिता — दीना
तम घिरे प्रात की श्री—सी

कपि ने सीता को देखा
श्वानों के बीच मृगी सी
विधु क्षीण कला—सी मलिना
परितप्ता दीन—दृगी—सी

कपि ने सीता को देखा
अनुमान लगाया पूरा
साध्वी सीता का परिचय
फिर भी रह गया अधूरा

हिल जीभ कदाचित कहती
हा राघव, हा रघुनन्दन
भीतर ही रह जाता था
भीतर का उमड़ा क्रन्दन

उस अश्रुमुखी सीता की
आँखों से ढर—ढर पानी
गोरे गालों पर गिरते
मानो गल रही जवानी

स्वच्छन्द छद्म कविता सी
सीता को सीता जाना
कुछ रूप रंग के माध्यम
से किसी तरह पहचाना

यह वही जानकी जिनको
रावण हर ले आया है
निश्चय ही राम-वधू है
कोई न इतर माया है

विश्वास हुआ जब कपि को
तब उमड़ी श्रद्धा मन की
मस्तक करबद्ध नवाया
पुलकित रोमावलि तन की

दुख देख सती सीता का
हनुमान रो पड़े व्याकुल
सबसे रे काल प्रबल है
कहकर हो गये व्यथाकुल

तब तक प्रमदाजन—आवृत
लंकाधिप रावण आया
आतंक छा गया सब पर
प्राणों में कम्प समाया

लंकेश—तेज से डर कर
कपि और चढ़ गये ऊँचे
फिर भी समक्ष दृग के थे
नीचे के दृश्य समूचे

तन—मन काँपा सीता का
सीता का यौवन काँपा
असहाय सिकुड़ कर बैठीं
पातिव्रत का धन काँपा

भयभीत मृगी सी सीता
रो पड़ीं विवश घबड़ा कर
हा, रघुनायक रघुनन्दन
कह अन्तर्व्यथा जगाकर

निष्करुण दशानन बोला
सीते तू क्यों रोती है
रो-रोकर अपने जीवन
के सुख के दिन खोती है

तू भूल सकी न अभी तक
उस राम तपस्वी नर को
मूर्खे न अभी तक जाना
हम दोनों के अन्तर को

वह कहाँ राज-हित चिन्तित
मैं कहाँ राज का स्वामी
वह कहाँ विराट भिखारी
मैं कहाँ कनक-पथ-गामी

वह उदासीन वनवासी
तुझसे न प्रेम करता है
गुणहीन — कृतघ्न — नराधम
कहने को ही भर्त्ता है

निःस्पृह — असंग — एकाकी
तरुणी—वियोग क्या जाने
तुझमें कितना आकर्षण
वह नीरस क्या पहचाने

उसकी सुधि के सम्बल से
तू कब तक जी सकती है
क्यों मुझसे लजा—लजा कर
तन बार-बार ढकती है

यह यौवन—सरिता जलसम
कुछ दिन में बह जायेगा
यह रूप सरस आकर्षक
निष्फल ही रह जायेगा

ले मान प्रार्थना मेरी
पूरी अभिलाषा कर दे
तू हृदय-अधिष्ठात्री बन
मस्ती ही मस्ती भर दे

छिप गया कहीं वह बन में
मिलता न खोजने पर भी
होगा भी तो न मिलेगा
उसको मेरा है डर भी

इसलिये नहा धोकर तू
ले पहन, रेशमी सारी
मेरी श्री बन कर रह जा
ओ फूलों सी सुकुमारी

तृणपात बीच में रख कर
सीता बोली खिझलाकर
ओ राक्षस लाज न आती
भारी अपकीर्ति कमा कर

ज्यों सूनी मखशाला से
कुत्ता हवि ले भगता है
त्यों मुझे चुराया अघ से
क्या तुझे न डर लगता है ?

है जन्म हुआ सत्कुल में
सत्कुल में ब्याह हुआ है
तू मुझे न नरक दिखा रे
अति अन्तर्दाह हुआ है

परवश हूँ सुन लेती हूँ
तेरी कठोर बातों को
मैं विवश सहन करती हूँ
विष - बुझे कशाघातों को

तू हित की बात न सुनता
यह लक्षण कुल—घातक है
तू धर्म—निपुण होकर भी
मद—वश करता पातक है

जैसे तू रक्षा करता
निशि—दिन अपनी नारी क
वैसे ही तू रक्षा कर
रे मुझ—सी पर नारी की

गाली दे हरि को उनकी
तू महिमा हर सकता है
तू धूल फेंक कर रवि पर
क्या रवि का कर सकता है

जग वन्दनीय रघुनंदन
मैं उनके तन की छाया
उनके समक्ष तू क्या है
वह हरि मैं उनकी माया

जिस तरह सोख लेते हैं
रवि के कर सरिता—जल को
वैसे ही पी जायेंगे
प्रभु के शर तेरे बल को

दुम दबा श्वान भगता है
पा गन्ध सिंह की जैसे
रघुकुल नायक के डर से
तू भग जायेगा वैसे

दशशीश तड़प कर बोला
तू क्या बक बक करती है
चुप जीभ खींच लूँगा मैं
मुझसे न तनिक डरती है

कहना न मानती अब भी
बरजोरी मनवा लूँगा
या शीश काट कर तेरा
काली को बलि दे दूँगा

तलवार निकाली चमचम
शिर झुका दिया सीता ने
भगवान तुझे सन्मति दे
करबद्ध कहा सीता ने

एँ यह क्या करते हो तुम
मयसुता रोक कर बोली
इस दुखिया के शोणित से
ठहरो, मत खेलो होली

जो चाह रहीं सुन्दरियाँ
उनकी न तुम्हें चिन्ता है
इस विपति—भरी के तन में
अब बचा रूप ही क्या है

अबला है, स्वयं मरी है
इसको तुम क्या मारोगे
हाँ, इसके आकर्षण में
राक्षस—कुल संहारोगे

रावण बोला, अयि सुन्दरि
पड़ रही बीच में हो तुम
तो तुम जानो समझा दो
असि मौन हो गयी लो तुम

यदि मास द्वय में आकर
यह स्वयं न मुझसे बोली
सागर के सुरभित तट पर
यह मेरे साथ न डोली

तो इसे काट प्रातः का
जलपान बना डालूँगा
अब नहीं युगों तक घर में
इस नागिन को पालूँगा

दशशीश डरा धमका कर
जब चला गया तब सीता
मूर्च्छित हो गिरीं धरा पर
उच्छ्वसिता परम पुनीता

कुछ देर बाद आँखों के
निर्भर से झर—झर पानी
अब कौन कहे रो—रो कर
आँसू की करुण कहानी

उसपर भी निष्ठुरता से
राक्षसियाँ धमकाती थीं
मुख तनिक सती का देखो
कह—कह कर चमकाती थीं

तुझ सदृश घूमतीं सतियाँ
लंका की गली-गली में
रसिकों के दृग फँस जाते
उनकी कुँचित त्रिवली में

उनको न पूछता रावण
पर तुझपर रीझ गया है
हत भागिन, उसे मनाले
आतुर वह खीझ गया है

त्रिजटा बोली राक्षसियों
सीता से कुछ मत बोलो
भागो गिर-गिर चरणों पर
वाणी में विष मत घोलो

मैंने देखा सपना है
जो बना हुआ अपना है
वह सब कुछ धधक रहा है
अब तो शिव-शिव जपना है

लंका में आग लगी है
कोई कपि जला रहा है
गलियों में पिघल-पिघल कर
रत्नों का ढेर बहा है

शिर मुड़ा तेल पी-पी कर
राक्षस दक्षिण दिशि जाते
पुष्पक से गिरा दशानन
भूपर रोते बिलखाते

कट गये शीश दशमुख के
लंका में दुख छाया है
घर का भेदिया विभीषण
राजा बन कर आया है

त्रिजटा का सपना सुनकर
राक्षसियों के मुख सूखे
घर—घर भागीं छू—छू कर
जगदम्बा के पद रूखे

हनुमान देखते थे सब
पर तरु पर हिले न डोले
रघुनाथ—कार्य—बाधा — वश
उमड़े पर तनिक न बोले

—:o:—
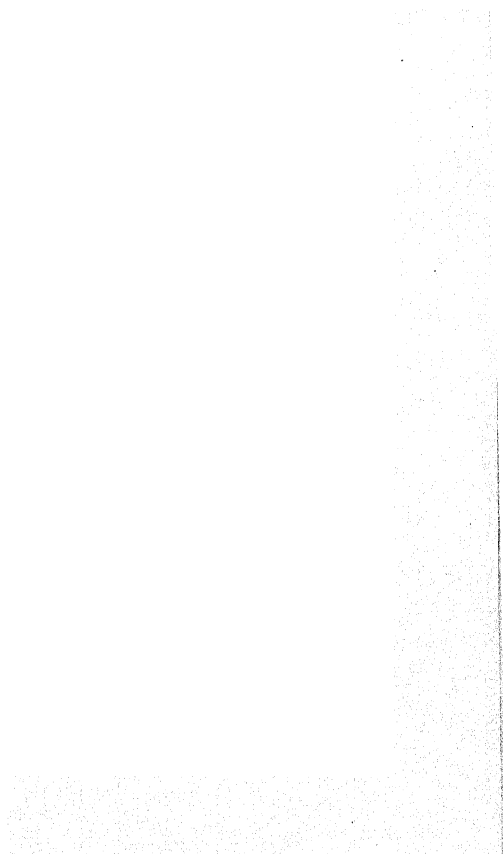
तृतीय सर्ग

हनूमान अब नीचे की
डाली पर तुरत उतर आये
करने लगे राम—यश—वर्णन
आँखों में जल—कण छाये

धर्मशील दशरथ के नन्दन
राम, लोक हितकारी हैं
मान पिता की आज्ञा बन में
आये अवधबिहारी हैं

चरण-चिह्न पर फूल चढ़ाते
आये लक्ष्मण भाई हैं
कूलों से रक्षित सरिता सम
साथ जानकी आई हैं

वीर राम ने खर-दूषण
त्रिशिरादि राक्षसों को मारा
रघुनायक के अग्नि बाण ने
खल-दल-बल को ललकारा

इसीलिये रावण सीता को
आश्रम से हर लाया है
तब से दोनों राजकुमारों
के मुख पर दुख छाया है

राम और सुग्रीव परस्पर
मित्र बने सुख—दुख के हैं
राम—बाण से बालि मरा
ऐसे दुख राम-विमुख के हैं

कपिनायक की आज्ञा से
कपि घूम रहे गिरि-गिरि वन-वन
सीता-चरण खोज में व्याकुल
व्यग्र वानरों के तन-मन

गगन—धरा—पाताल छानते
छितराये लाखों वानर
लेकिन मैंने ही देखा
सीता को अपनी आँखों भर

रूप रंग सीता का जैसा
राघव ने बतलाया है
वैसा ही तो रूप रंग सीता
का मैंने पाया है

डरें न मैं कोई राक्षस हूँ
मन में तनिक न त्रास करें
रामदूत हनुमान नाम है
मुझ पर कुछ विश्वास करें

श्यामल रंग मनोज्ञ अंग हैं
कलित केश घुघराले हैं
राज—चिह्न—मण्डित—पण्डित
प्रिय दर्शन राम निराले हैं

परम यशस्वी देश काल का
उन्हें ज्ञान है ज्ञानी हैं
पृथ्वी पर विख्यात धनुर्धर
धर्म—निरत विज्ञानी हैं

उनके छोटे भाई लक्ष्मण
परम भक्त हैं, गोरे हैं
वर्चस्वी हैं, लाल-लाल
उनकी आँखों के डोरे हैं

दोनों भाई दो सिंहों की
तरह महा बलशाली हैं
किन्तु आप की चिन्ता से
दोनों विनोद से खाली हैं

मुद्रा से ऐसा लगता जैसे
विश्वास न होता है
समाचार मिलने पर भी क्यों
तन-मन-जीवन रोता है

प्रभु ने दी यह लें अंगूठी
इसे सँभालें पहचानें
रघु—कुल—तिलक राम के
चरणों का सेवक मुझको जानें

हाथ जोड़ कपि खड़े हो गये
कहकर जो कुछ कहना था
अब तो सीता के मन को
उस कहे हुए में बहना था

राम हाथ की अंगूठी के
दर्शन से हग भर आये
बोलीं, वत्स जिओ कैसे
तुम लंका के अन्दर आये

नर-वानर में मेल हुआ
कैसे यह भी बतलाओ तुम
बार-बार रघुनाथ-कथा
कह-कह कर मुझे जिलाओ तुम

रामदूत हो इससे भाषण
करने के अधिकारी हो
वत्स तुम्हारा अमृत बोल
सर्वत्र सुलभ हितकारी हो

हनूमान मेरे प्रश्नों के
उत्तर हों तो कुछ उत्तर दो
मेरे शंकाकुल मन में
सन्तोष तृप्ति के स्वर भर दो

हतोत्साह भगवान भूल तो
कभी नहीं करते होंगे ?
सूर्यवंश के सूर्य, कर्म से
सब के मन हरते होंगे !

क्या उनके साथी सब उनके
पास बराबर आते हैं ?
दण्ड-भेद से कभी-कभी क्या
अरिदल को धमकाते हैं ?

क्या श्रद्धा से कुल देवों की
सदा प्रार्थना करते हैं ?
अग्निहोत्र वैदिक कर्मों से
देवों के चित हरते हैं ?

पीड़ित होकर भी हरि ने
पुरुषार्थ नहीं छोड़ा होगा ?
मेरे अपने बन्धन का
सम्बन्ध नहीं तोड़ा होगा ?

नित्य अवध के समाचार
क्या उनको मिलते रहते हैं ?
मेरा कब उद्धार करेंगे
क्या रघुनन्दन कहते हैं ?

क्या उनको समिधा कुश पल्लव
अग्नि समय पर मिल जाते ?
या उस समय याद कर मुझको
मर्म व्यथा से अकुलाते ?

कहो विपति के समय भरत
भाई की मदद करेंगे क्या ?
मेरे लिये सैन्य लेकर के
संगर में उतरेंगे क्या ?

गहन-अर्थ-गर्भित वचनों को
कह चुप हुईं जगन्माता
कपि के मधुर वचन सुनने को
उन्मुख हुइ जनकजाता

कपि ने उत्तर में राघव की
दिनचर्या ही कह डाली
नर-वानर की मेल-कथा कपि-
परिचर्या भी कह डाली

राहु-मुक्त शशि के समान
हो गया प्रसन्न रमा का मुख
क्षण भर के ही लिये सही भग
गया रमेश-विरह का दुख

सीता बोलीं हनूमान से
आशीर्वाद तुम्हें सौ सौ
रामकथा से तृप्ति न होती
अभी लगी सुनने को लौ

हाथ जोड़ झुककर कपि बोले
माँ, सम्यक् हरिवृत्त कहा
अब तो चरण स्वयं आते हैं
होता मुझे बिलम्ब महा

सागर के उस पार प्रतीक्षा
में बैठे साथी वानर
विलम गया तो माँ, बैठे ही
वे भूखों जायेंगे मर

उधर बन्धु सुग्रीव सहित प्रभु
विकल प्रतीक्षा में होंगे
मासावधि गत हुई जननि
जाने किस इच्छा में होंगे

इससे अब मुझको आज्ञा दें
और चिह्न दें, जाऊँ मैं
मिली जानकी शीघ्र सूचना
यह प्रभु तक पहुँचाऊँ मैं

ताकि भालु-कपि-दल ले लंका
पर चढ़ धावें रघुनन्दन
श्री चरणों को मुक्ति मिले
लंका में उठे विकल क्रन्दन

जगदम्बा ने कहा वत्स यह
चूड़ामणि लो, जाओ तुम
मुझ अबला की अश्रु-कहानी
प्रभु को तुरत सुनाओ तुम

ऐसा कहना जिससे मेरी
विपति कटे प्रभु-शरण मिले
मेरे तन-मन-जीवन के सब कुछ
रघुनायक-चरण मिले

कपि बोले माँ, धैर्य रखें
रावण मरने ही वाला है
रामबाण अविलम्ब जननि,
सब दुख हरने ही वाला है

किन्तु एक आज्ञा दें मुझको
भूखा हूँ फल खाऊँगा
इसी बहाने दशमुख से मिल
प्रभु का काम बनाऊँगा

मेरे मन को लुभा रहे हैं
पके-पके पेड़ों के फल
अरि की शक्ति बिना जाने
प्रभु पास लौटना भी निष्फल

लघु तन से मत निर्बल समझें
वायु सदृश बलशाली हूँ
माँ, न राक्षसों की चिन्ता है
मैं कालाग्नि कपाली हूँ

यह कह कर माँ से आज्ञा ले
बार बार कर पद-वन्दन
लपके फल से लदे झुके
वृक्षों की ओर पवन-नन्दन

फल खा-खा तरु लगे तोड़ने
किलक-किलक हनुमान बली
खग-कुल के क्रन्दन से मुखरित
बन अशोक की गली-गली

वृक्ष-भंग-रव-खग-कोलाहल से
भयभीत हुई लंका
डरे निशाचर अपशकुनों से
मन में उठी भयद शंका

लङ्काधिप ने जब अशोक
बन के विनाश की सुनी कथा
और रक्षिका राक्षसियों के
क्रन्दन में जब सुन व्यथ

सीता और वायुसुत के
संभाषण का जब हाल सुना
तब उसका खर क्रोध गरल
की तरह बढ़ा दश-बीस गुना

जलती आँखों से आँसू के
विन्दु गिरे आसन पर यों
दीप्त दीपिकाओं से ज्वाला
सहित स्नेह गिरते हैं ज्यों

बोला, वानर का यह साहस
अरे अधम को धरो-धरो
वीर राक्षसों, पेट चीर कर
फल निकाल लो प्राण हरो

कहाँ किधर से इधर आगया
रक्षित लङ्का के अन्दर
वीरो, जल्दी करो पकड़ लो
भग न सके पाजी बन्दर

—:o:—
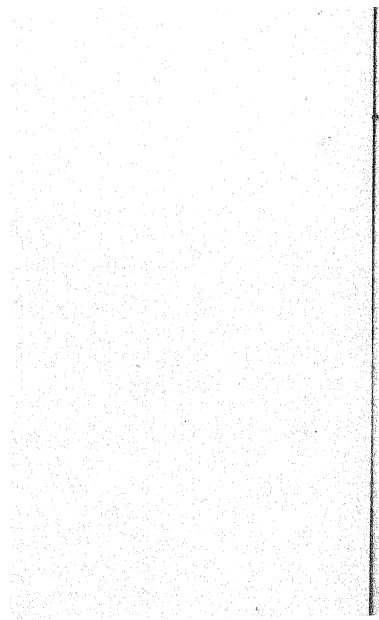
चतुर्थ सर्ग

लंकाधिप की आज्ञा से
हथियार लिये राक्षस धाये
जाकर कपि पर तुरत एक
ही बार अस्त्र सब बरसाये

हनूमान ने पूँछ पटक कर
गर्जन बारम्बार किया
और राम-लक्ष्मण का कर्कश
स्वर से जय-जयकार किया

लंका की सेना तो कपि के
गर्जन रव से काँप गई
हनूमान के भीषण दर्शन
से विनाश ही भाँप गई

उस कम्पित शंकित सेना पर
कपि नाहर की मार पड़ी
त्राहि-त्राहि शिव त्राहि-त्राहि शिव
की सब ओर पुकार पड़ी

पच्छिराज जैसे सर्पों के
झपट प्राण हर लेते हैं
वैसे ही निष्प्राण राक्षसों
को धर-धर कर देते हैं

तनिक देर में निशाचरी
सेना का सत्यानाश हुआ
बहुत दिनों के बाद आज
लंका के मद का नाश हुआ

शेष निशाचर प्राण बचा कर
भागे लंका के अन्दर
रावण से बोले अजेय है
महा भयंकर है बन्दर

पलक भाँजते परिघ उठा कर
सजग राक्षसों को मारा
उसे मारना कठिन काम है
उसने सब को ललकारा

कौन काल के मुख में जाये
कीश काल बन आया है
लंका के माथे पर जैसे
महानाश मँडराया है

दाँत पीस कर रावण बोला
अरे कायरो बोलो मत
डूबो चुल्लू भर पानी में
बन्द करो मुख, खोलो मत

अरे एक वानर से डरते
छिः छिः लाज नहीं आती
और उसी का वर्णन करते
कटकर जीभ न गिर जाती

वानर से डरने वालों को
लंका जगह न दे सकती
उनके निष्फल जीवन का
बोझा न शीश पर ले सकती

हटो, सामने से जिसका
जी चाहे जहाँ चला जाये
जो न देश का साथी है
वह अर्थी कहीं बिला जाये

बोला अक्षकुमार बीच में
मेरे रहते दुख न करें
मेरा मन व्याकुल होता है
ऐसा चिन्तित-मुख न करें

उस उत्पाती वानर को
बरजोरी आज झटक दूँगा
पूँछ पकड़कर अभी आपके
सम्मुख यहीं पटक दूँगा

उसके बने मांस का कल
जल-पान करेंगे कुल के सब
और आपका यश गायेंगे
देश-देश में खुल के सब

यह कह रावण से आज्ञा ले
बार-बार पद वन्दन कर
दीप्तयान पर मंत्रि-सुतों के
साथ चला वह वीर प्रवर

लेकिन रथ के केतु-दंड पर
बैठा गीध बड़ा भारी
और समक्ष हुआ स्यारिन का
क्रन्दन भयद अशुभ-कारी

फिर भी वह उन्मत्त सूरमा
रुका न रुकने वाला था
भारी विघ्न के समक्ष वह
झुका न झुकने वाला था

रथ पर आते देख अक्ष को
हनूमान का क्रोध बढ़ा
और अक्ष के भी उर में
कपि-दर्शन से प्रतिशोध बढ़ा

दोनों योधा दो सिंहों की
तरह गरजते जूझ पड़े
एक दूसरे पर प्रहार के
दाँव-पेंच सब सूझ पड़े

अक्ष मारता बाण मगर
हनुमान उछल उड़ जाते थे
कपि के तीक्ष्ण प्रहार अक्ष पर
भी आकर मुड़ जाते थे

दोनों थे आश्चर्य चकित
कुछ भी न समझ में आता था
एक दूसरे को परास्त करने
में बल, बलखाता था

हनूमान ने सोचा, यह
बालक है पर रण-ज्ञानी है
इसके मुख पर अभी चमकता
रण करने का पानी है

थका न थकने का कोई
लक्षण दिखलाई देता है
यह तो उत्साहित हो होकर
गरज-गरज रण लेता है

अगर किया आलस्य कहीं तो
बड़ा भयंकर फल होगा
इससे इसको मार डालने
में ही आज कुशल होगा

यही सोच कपि झपट अक्ष
की ओर बढ़े, मुख ज्योति जली
गला अक्ष का पकड़ प्राण
पी गये तुरत बजरंगबली

हाहाकार मचा संगर में
बचे निशाचर भाग गये
अस्त्र-शस्त्र हाथी घोड़े रथ
साहस बल सब त्याग गये

अक्ष-मरण के समाचार से
डर कर लंका काँप गयी
मृत्यु नाचने लगी सामने
नाश निकट है भाँप गयी

क्रुद्ध साँप की तरह साँस
दशशीश सरोष लगा लेने
दशों मुखों की बीसों आँखों
से वह भीति लगा देने

मेघनाद को सम्मुख देखा तो
आँखों से झर-झर जल
कुछ भी कह न सका पर उसको
ज्ञात हो गयी बात सकल

देख पिता को दुखी पुत्र भी
दुखी हुआ पर बोल उठा
उसके भाषण से थर-थर
धरती का कण-कण डोल उठा

पूज्य पिताजी, मेघनाद का
श्री चरणों में वन्दन लें
फिर मुझको समुचित आज्ञा दें
बार-बार अभिनन्दन लें

धर्म कर्म सन्ध्या वन्दन में
जिनकी चाह न होती है
उन इच्छाचारी मूर्खों की
कोई राह न होती है

क्षमा करें, लंका को तो अब
धर्म-कर्म से काम नहीं
इसीलिये भय-ग्लानि चतुर्दिक
कहीं यजन का नाम नहीं

एक कहीं से बन्दर आया
काँप गयी लंका थर-थर
यह कितना दौर्बल्य देश का
भय से सब भागे भर-भर

अस्तु हुआ सो हुआ मगर अब
आगे सही सतर्क रहें
ध्यान रखें नव-रण-पद्धति का
विगत सफलता में न बहें

वानर को तो अभी सामने
पूँछ पकड़ रख देता हूँ
लेकिन उसका क्षमा करें
अन्याय न हो, कह देता हूँ

यह कह दुष्ट हाथियों से
कर्षित रथ पर रणधीर चला
काले मेघों पर जैसे
बलवत्तर प्रखर समीर चला

रथ पर आते देख वीर को
हनूमान गरजे धाये
और गगन में गुप्त प्रकट हो
शिला-खण्ड-तरु बरसाये

तीक्ष्ण शरों से शिला-खण्ड सब
चूर-चूर हो धूल हुए
कप के कठिन प्रहार वीर पर
नव गुलाब के फूल हुए

कपि के चारों ओर विषैले
बाण की बरसात हुई
ऐसी वह बरसात कि दिन में
बड़ी अँधेरी रात हुई

मगर धन्य बजरङ्ग बली उस
घन-तम को पी गये तुरत
आंशकित म्रियमाण देव
कपि-दर्शन से जी गये तुरत

दोनों की आक्रमण-विफलता
ने दोनों को चकित किया।
एक दूसरे के रण-कौशल
ने दोनों को थकित किया

एक बार कपि बड़े वेग से
मेघनाद-सन्निधि आये
मगर तेज की आँच लगी
फिर लौट गये नभ पर छाये

हनूमान की देख धृष्टता
मेघनाद को रोष हुआ
राम-दूत से यों रण करने
में न उसे सन्तोष हुआ

बड़े क्रोध के साथ गरज
ब्रह्मास्त्र पवनसुत पर छोड़ा
गिरे अचेत धरा पर कपिवर
विवश युद्ध से मुँह मोड़ा

हनूमान के गिरते ही
संगर के सब राक्षस धाये
विजय-हर्ष से बहुत उछलते
कपि के पास तुरत आये

बना जहाँ तक मारा सब ने
अंग-अंग कस बाँध दिया
हा, घसीटते रामदूत को
चले न तनिक विचार कया

यदि विचार हो होता तो
कैसे दुर्मति कहलाते वे
निरपराध तप-निरत साधु
व्रतियों को क्यों दहलाते वे

अंग-अंग छिल गया मगर
अपने तन की परवाह न की
रावण-मिलन-मोह-वश कपि ने
एक बार भी आह न की

—:०:—

पंचम सर्ग
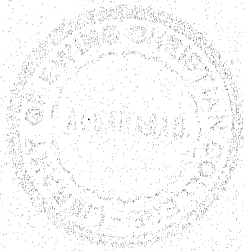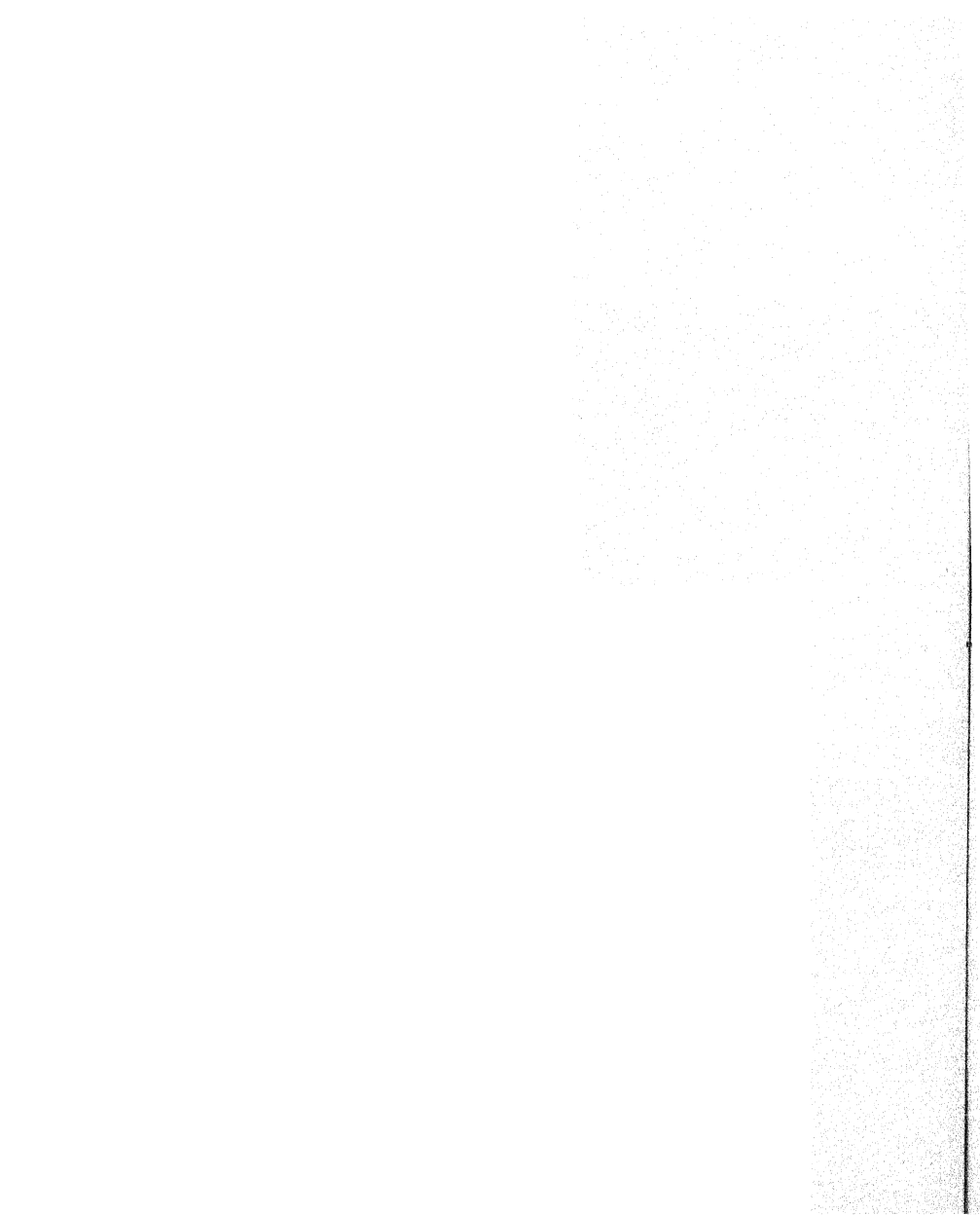
मतवाले हाथी की तरह
बँधे हुए बैठे हनुमान
रक्षक उनके चारों ओर
खड़े सतर्क चकित शर तान

वैभव— तेज— शक्ति —सम्पन्न
लंकाधिप का देख प्रताप
हनूमान रह गये अवाक
सुनकर संस्कृत में संलाप

रावण की श्री निर्मल गात
कनक अलंकारों से कलित
उन्नत मस्तक पर छविमान
मुकुट मनोहर मुक्ता-जटित

लाल-लाल आँखें अंगार
चन्दन से चर्चित सब अंग
तन पर नव रेशम के वस्त्र
तेज प्रताप देख कपि दङ्ग

लंकाधिप से इंगित मिला
बोला सचिव प्रधान प्रहस्त
वानर, बोलो तनिक न डरो
कहाँ से आये तुम अलमस्त

किसने तुमको भेजा यहाँ
उजाड़ा क्यों अशोक बन कहो
क्यों तुमने राक्षस वध किया
बोलो सत्य मौन मत रहो

सच बोलोगे तो तुम सुन
छोड़ दिये जाओगे अभी
अगर झूठ बोले तो तुम्हें
प्राण-दण्ड देंगे हम सभी

सुनकर मित प्रहस्त के प्रश्न
सावधान बोले हनुमान
मै तो सत्य कहूँगा मगर
आप उसे जैसा लें मान

लंकाधिप-दर्शन के लिये
मैं आया वानर-कुल-जात
पर दर्शन होना, था कठिन,
किया इसी से कुछ उत्पात

कपि स्वभाव से हूँ लाचार
और न सूझा मिलन-उपाय
जिसने मारा मारा उसे
मै जीवित हूँ दैव सहाय

फिर भी तो मैं बाँधा गया
लेकिन मैं हूँ बन्धन-मुक्त
केवल भूप-मिलन के लिये
हुआ उपस्थित हूँ सुख-युक्त

महामहिम हे राक्षसराज
मैं हूँ काल राम का दूत
मित्र आपके हैं सुग्रीव
अपने कुल के साधु सपूत

उन्होंने ही भेजा है मुझे
श्रद्धा से पूछा है क्षेम
और दिये जो हैं सन्देश
क्षण भर सुन लें उन्हें सप्रेम

सभी सुनें नृप-हित की बात
कहा कपीश्वर जो आज
वही आप्तजन-आदृत कर्म
जिससे पीड़ित हो न समाज

राम-वधू लंका में दुखी
उनका हुआ कुटी से हरण
जगदम्बा सीता के पूज्य
मैंने देख लिये हैं चरण

धर्मी को मिलती सुख शान्ति
और अधर्मी रोता सदा
इससे ज्ञानी-त्याग अधर्म
धर्म-कर्म-रत होता सदा

धर्म-मर्म के ज्ञाता आप
कैसे किया पर-स्त्री हरण
यह तो बुध-जन-निन्दित कर्म
इसका फल है केवल मरण

पाये तप से जो सम्मान
धन यश विजय प्रचंड प्रताप
निगल जायगा उनको अभी
सीता को हरने का पाप

काल-रात्रि हैं सीता गहन
कर देंगी लंका का नाश
नागिन हैं सीता लंकेश
डस लेंगी कर लें विश्वास

इसी लिये कहता हूँ उन्हें
सौंप राम को दें दशशीश
और क्षमा मांगें कर जोड़
निर्भय कर देंगे जगदीश

जो न करेंगे ऐसा आप
तो न बचेंगे जीवन प्राण
पी जाते अरि-रक्त अशेष
पराक्रमी राघव के बाण

सह न सका कपिवर की बात
उठ रावण बोला ललकार
अरे बहुत यह वानर ढीठ
और साथ ही बड़ा लबार

क्षमा न हो सकता अपराध
प्राण-दण्ड दो मारो चलो
खौलाओ सरसों का तेल
उस में इस वानर को तलो

आग जलाओ फूँको अभी
कच्चे ही खा जाओ इसे
बड़ा धूर्त्त है कपटी नीच
साँपों से कटवाओ इसे

रावण को उत्तेजित देख
कहा विभीषण ने कर जोड़
प्रभो, शान्त हों, रोकें क्रोध
मत बोलें मर्यादा तोड़

नाथ, किसी का यह तो दूत
केवल कहता है सन्देश
इस वानर का क्या अपराध
प्राणदण्ड मत दें लंकेश

दूत न मारा जाता कहीं
यही महीपतियों की रीति
धर्म-नीति का पालन कर
इससे कभी होगी भीति

प्रभो, आप शास्त्रों में निपुण
अगर आप से होगी भूल
तो अधर्मियों का उत्पात
बढ़ जायेगा श्रुति-प्रतिकूल

आप शिष्ट धर्मज्ञ अजेय
सत्य शील बहुश्रुत विद्वान
बहुत दूर तक सोचें आप
दें इसको प्राणों का दान

जिसने भेजा इसको यहाँ
उस का सैन्य सहित वध करें
जिसने किया आप से वैर
उस दुर्जन का जीवन हरें

सावधान रावण ने कहा
अहो सत्य कहते हो बन्धु
सचमुच होता दूत अवध्य
सदा सजग रहते हो बन्धु

पर यह वानर है अविनीत
इसे कुछ न कुछ दूँगा दण्ड
बन्धु प्रवर, धरती पर क्योंकि
दण्डनीय होता उद्दण्ड

बानर की शोभा है पूँछ
वीरो, उसमें बाँधो वस्त्र
तेल छिड़क कर फूँको अभी
मगर न कोई रहे निरस्त्र

दौड़े राक्षस लाये वस्त्र
लम्बी दुम में बाँधे कसे
उस पर छिड़क दिए घी तेल
ताली बजा-बजा कर हँसे

कपि ने बढ़ा दिया लाङ्गूल
बँधने लगी सूत सन रुई
फिर भी दुम बाकी ही रही
बहुत बड़ी हैरानी हुई

घटने लगा वस्त्र घी तेल
रजनीचर झुँझलाने लगे
आग धराने को अविलम्ब
अकुलाने उकताने लगे

तभी गरज बोला दशकन्ध
क्यों-क्या हुआ, हुई क्यों देर ?
अभी लगा दो दुम में आग
और इसे लो झट से घेर

वीर राक्षसो, चारों ओर
सजग खड़े हो जाओ अभी
कपि न कहीं फिर करे अनर्थ
शस्त्रों से डरवाओ सभी

रावण का पाकर आदेश
किया राक्षसों ने रव घोर
झट से आग लगा दी गयी
भभक उठी लाङ्गूल अथोर

महावीर कपिवर का क्रोध
बढ़ा आग के साथ प्रचण्ड
गरजे तो गरजा अम्भोधि
गरज उठा आकाश अखण्ड

महासिन्धु में लहरें उठीं
रजनीचर हो गये अचेत
काँप उठा लंका का हृदय
इष्टदेव कुलदेव समेत

—:o:—

षष्ठ सर्ग

वरिष्ट कीश का बदन
अँगार लाल हो उठा
समग्र गात ही महा महा
कराल हो उठा

हुआ विराट रूप वन्ध
टूट टूट कर गिरे
कठोर गर्ज से त्रिकूट-
कूट फूट कर गिरे

क्षणे क्षणे शरीर वृद्धि
से चकित त्रिलोक था
कहीं अनन्त हर्ष तो
कहीं अपार शोक था

विलोचन स्फुलिंग नेत्र
द्वार पर चमक उठे
प्रदीप्त भाल पर विलोल
स्वेद कण दमक उठे

उज्वल पर अदम्य
तेज वर्त्तमान था
प्रचण्ड मान-भंग-जन्य
क्रोध वर्धमान था

ज्वलन्त पुच्छ-बाहु
व्योम में उछालते हुए
अराति पर असह्य
अग्नि-दृष्टि डालते हुए

उठे कि दिग-दिगन्त में
अवर्ण्य ज्योति छा गई
कपीश के शरीर में
प्रभा स्वयं समा गई

प्रबुद्ध वायु-पुत्र राम-
दूत के प्रताप से
त्रिकूट डगमगा उठा
प्रदीप्त वह्नि-ताप से

कराल आग पुच्छ की
बड़ी अशान्त भाव से
अनन्त व्योम चूमने
चली घने घुमाव से

समग्र वस्तु राशि को
लपेटती हुई बढ़ी
निशाचरी जमात को
चपेटती हुई बढ़ी

बड़े बड़े पराक्रमी सभीत
भागने लगे
इधर उधर विपन्न
प्राण भीख माँगने लगे

कलत्र पुत्र पौत्र
बन्धु-वर्ग का न ज्ञान था
विवस्त्र हो गये परन्तु
वस्त्र का न ध्यान था

ज्वलन्त पुच्छ लाल थी
सरोष वक्त्र लाल था
कपीश-नेत्र लाल थे
समग्र लाल-लाल था

कपीश घूमने लगे
सगर्व गेह-गेह पर
धधक उठे अँगार
लाल लाल देह-देह पर

हवा बही विचित्र
दृश्य आग का कराल था
गहन दहन कराल रूप
आग का कराल था

कराह जीव जन्तु का
करुण मगर कराल था
जहाँ निहारिये वहीं
कराल ही कराल था

अजस्र वायुपुत्र का
कठोर नाद घोर था
यहाँ वहाँ सभी जगह
यही अघोर शोर था

अरे कपीश पुच्छ का
कृशानु है कि काल है
प्रचण्ड वाडवाग्नि है
कि रुद्र नेत्र-ज्वाल है

विनाश का प्रतीक है
न सूक्ष्म है न स्थूल है
प्रदीप्त काल अग्नि है
त्रिनेत्र का त्रिशूल है

कपीश-पुच्छ आग है नहीं
असह्य नर्क है
दवाग्नि है मगर सदा
स्वपक्ष में सतर्क है

कला जला, नगर जला कि
क्या जला, कहाँ जला,
बड़ा गरम धुआँ उठा,
यहाँ जला वहाँ जला

जिधर-जिधर चपेटती
उधर-उधर विनाश है
अनन्त सूर्य-रश्मि-पुंज
का प्रखर प्रकाश है

समस्त यातुधान
अम्बु-अम्बु बोलते रहे
अधीर त्राहि शम्भु
बोल-बोल डोलते रहे

गवाक्ष-द्वार जल गिरे
प्रदीप्त धाम-धाम से
अवर्णनीय स्वर्ण के
महल गिरे धड़ाम से

समग्र भोग-वस्तु के
समेत दैत्य जल गये
अनन्त रत्न-राशि के
सहित वहीं पिघल गये

गृह — ज्वलन — निनाद
गेह-पात रव अखंड था
प्रकोप वीतिहोत्र का
प्रचण्डतर प्रचण्ड था

बँधे हुए गधे जले
तुरग खड़े-खड़े जले
कसे हुए मतंग व्यग्र
हो बड़े-बड़े जले

विहंग पिंजरस्थ चित्र
पंख फड़फड़ा मरे
मृगादि निरपराध पशु
तुरन्त हड़बड़ा मरे

सभाभवन जले धधक
धधक अटारियाँ जलीं
स्वकन्त को पुकारतीं
अधीर नारियाँ जलीं

कराल ज्वाल से घिरे
अनीकनी निवास में
रथी जले भभक भभक
प्रदीप्त वह्नि-पास में

न राम-दूत है कपीश
अग्नि मूर्त्तिमान है
अरे कृतान्त का अवर्ज्य
दंड दीप्तिमान है

लपट, लपट-लपट गले
गली-गली निहाल थी
इधर धधक उठी उधर
तड़प-तड़प कराल थी

पिघल-पिघल सुवर्ण
रत्न खोर-खोर बह गये
निशाचरी प्रयत्न के
अभेद्य दुर्ग ढह गये

निशाचरेश दृश्य देख
मन्द था अवाक् था
उदग्र गर्व के समक्ष
ढेर-ढेर खाक था

जहाँ खड़ा रहा वहीं
खड़ा रहा, न हिल सका
वपत्ति के समय उसे
कहीं न मित्र मिल सका

उधर बलिष्ठ यातुधान
रक्षिता पुरी जला
ध्वजा जला सुवर्ण की
अनीति आसुरी जला

कपीश पुच्छ वह्नि शान्ति
के लिये तपाक से
त्रिकूट-कूट से समुद्र
में गिरे छपाक से

गभस्ति के समेत
भासमान सिन्धु में गिरा
कि ज्योतिमय सभ्र
आसमान सिन्धु में गिरा

असह्य आग दाह से
समुद्र खौलने लगा
सभीति कूल और व्योम
ओर दौड़ने लगा

त्वरीक में नहा, बुझा
स्वपुच्छ वह्नि दाह को
प्रसन्न कपि चले थहा
समुद्र जल अथाह को

नगर दहन से शंकाकुल कपि
पुनः रमा-पद दर्शन कर
वात वेग से दुम उछालते
चले राम सन्निधि सत्वर

—:o:—
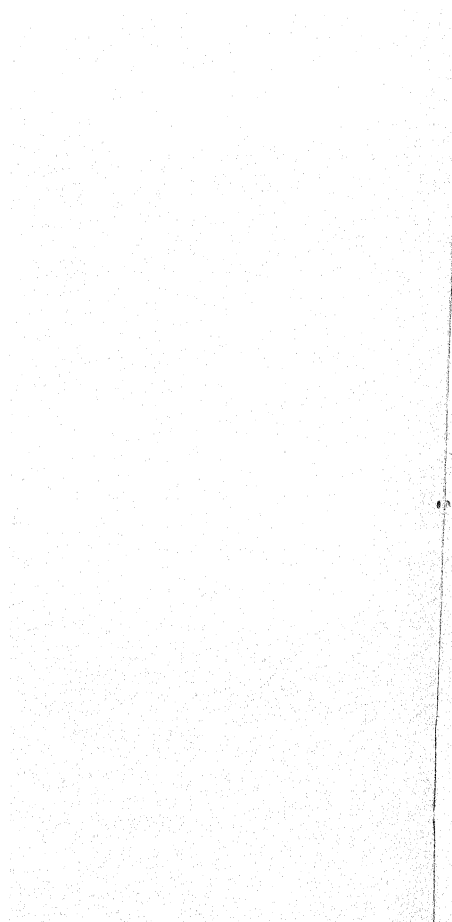
सप्तम सर्ग

हनूमान ज्या-मुक्त वाण की
तरह चले गर्जन करते
प्रबल वेग से व्योम लीलते
मेघों को वर्जन करते

छिपते कभी प्रकट होते
रंगीन घनों में चन्दा सा
समाचार सीता का उनके
गले लगा था फन्दा सा

बार-बार घन फाड़-फाड़
निकले तो दृश्य अनूप हुआ
सीता-कुशल-प्रसन्न कीश का
बड़ा मनोहर रूप हुआ

पुनः-पुनः गर्जन-तर्जन से
नभ-मंडल फटता सा था
हनूमान की शक्ति देख
लंका का मद घटता सा था

सिन्धु बीच से गिरि महेन्द्र को
देखा तो किलकार किया
हर्षनाद से परम हर्ष का
भू-नभ-बीच प्रसार किया

हनूमान के परिचित स्वर से
वानर हर्षित बड़े हुए
मुरझाये बैठे थे अब तक
किलक-किलक कर खड़े हुए

लगे मचाने उछल-कूद
विह्वल कपि किलकारी दे दे
महावीर के स्वागत में
स्वागत की फुलवारी ले ले

कितने दौड़ पड़े दर्शन-हित
कितने गिरि-तरु-शृङ्ग चढ़े
श्रद्धा से पुलकित वन हो हो
कितने अन्धाधुन्ध बढ़े

मची खलबली गिरि पर
सब की नभ की ओर लगीं आँखें
पास पहुँचने में लाचारी
दी न विधाता ने पाँखें

व्यूह तोड़ते घने घनों का
व्योम तैरते उतर पड़े
गिरि महेन्द्र पर कीश-चतुर्दिक
हाथ जोड़ कर हुए खड़े

पहले स्तुति की फिर अतृप्त सा
लगे देखने हनुमन्मुख
हनूमान के दर्शन से सब
भाग गये तन-मन के दुख

रामदूत के अंग-अंग के
दर्शन से न अघाते थे
तन में मन में पुलक प्राण में
दृग से जल बरसाते थे

जाम्बवान अंगद वरिष्ट
कपियों के पद छू, स्वर तोले
अर्घ्य पाद्य के बाद वीर
हनुमान वानरों से बोले

भद्र साथियो, राम-कृपा से
और तुम्हारे ही बल से
मैंने सीता के चरणों का
दर्शन किया पुण्य-फल से

और वीर बलवान शत्रु की
लंका पुरी हिला डाली
नगर जला डाला क्षण में
मिट्टी में कीर्ति मिला डाली

लेकिन सीता दुष्कर्मों से
घिरी बुद्धि सी दीना है
केवल साँसें ही चलती हैं
दुखिता परम मलीना है

जैसे हो वैसे सीता को
हरि-चरणों में लाना है
अशीर्वाद बड़ों का ले
अरि को यम-द्वार दिखाना है

समाचार सुन कर सब वानर
हर्ष-वेग से नाच उठे
पूँछ हिलाने लगे मगन हो
कितने वहीं कुलाँच उठे

अंगद बोले हनूमान से
धन्य-धन्य हो बलशाली
तुम पराक्रमी अप्रमेय हो
जग में कीर्ति बड़ी पा ली

सिन्धु पार कर समाचार ले
पुनः लौट आये सत्वर
सम्भव किया असम्भव को
कपि प्राण बचाये बन शंकर

हनुमन तुम सबसे महान हो
सदा तुम्हारी जय हो जय
देव बने जाते हो क्षण-क्षण
जग हितकारी जय हो जय

तुम में कितना पौरुष-बल है
तुम कितने उपकारी हो
केवल तुम्हीं प्रशस्त कर्म से
हरि-पद के अधिकारी हो

जय हनुमान विजय हो जय हो
जय हनुमान अजर जय हो
जय हनुमान चतुर्दिक जय हो
जय हनुमान अमर जय हो

हनूमान की जय, कर्कश स्वर
से विह्वल वानर बोले
जय जय के गम्भीर घोष से
गिरि के तरु थर-थर डोले

जाम्बवान बोले मनीषियो
अब क्षण भी देरी न करो
चलो राम को समाचार दो
बालि-बन्धु का दैन्य हरो

क्षुधा-तृषा से विकल वानरो
खाते-पीते जिये चलो
पथ के तरु-तरु के फल खाते
मधुवन के मधु पिए चलो

देववन्द्य हनुमान बली को
आगे कर लो बढ़ो चलो
गिरि से उतरो प्रिया-विरह से
दुखी राम हैं बढ़ो चलो

बड़े वृद्ध की आज्ञा पाकर
तुरत वानराधीश चले
हनूमान का मुख निहारते
सफल मनोरथ कीश चले

बढ़े गरजते दुम उछालते
बड़ा वेग था पाँवों में
हलचल थी पथि बसे
आश्रमों में नगरों में गाँवों में

तरु उखाड़ते शिला तोड़ते
व्योम कँपाते जाते थे
पुनः लौटने के हित वानर
राह बनाते जाते थे

गति में और तीव्रता आई
जब समीप आये वानर
सीता का शुभ समाचार ले
पूँछ उठा धाये वानर

उठी धूल तो मही-गगन
के बीच धूल ही धूल उड़ी
पथ कीशिला-शिलापिस-पिसकर
गति के साथ समूल उड़ी

धूल देख कपि-कोलाहल सुन
बालिबन्धु हरि से बोले
नाथ भालु-कपि सफल काम हैं
वाणी में मधु-रस घोले

मधुवन के मधु पी प्रमत्त हैं
कपि प्रसन्नता का स्वर है
हनूमान मन्त्री हैं तो फिर
असफलता का क्या डर है

अभी राम किष्किन्धापति के
मुग्ध वचन सुनते ही थे
और मौन शंकाकुल मन से
उस पर कुछ गुनते ही थे

तब तक विह्वल वानर सब आ
चरण छुये रघुनायक के
खड़े हुये कर जोड़ बोल जय
पद छू-छू कपि-नायक के

जाम्बवान अंगद इंगित पा
हनूमान आगे आये
हरि-चरणों में माथ नवा
अद्वैत मिलन का सुख पाये

हरि समीप चूड़ामणि रख
किंचित हट, कर जोड़े बोले
ह्रस्व दीर्घ व्याकरण शुद्ध
वाणी में वशीकरण डोले

नाथ, अभी सीता जीवित हैं
तन से प्राण न भागे हैं
उच्छ्वसिता बलहीना के
जन्मान्तर के अघ जागे हैं

पतिव्रता के तन-मन जीवन
में आप विराजे हैं
बाज रहे उच्छ्वासों में भी
प्रभु-यश के ही बाजे हैं

प्रभो, पदों का ध्यान न होता
स्मृति का कहीं न बल होता
तो जननी का समाचार
आँखों में जल ही जल होता

लंका में पापी रावण की
मृत्यु, वन्दिनी सीता है
हा, कुत्तों से घिरी मृगी सी
व्याकुल है भयभीता है

जगदम्बा को दे न सकेगा
रावण अत्याचारी है
और बहुत दिन जी न सकेंगी
सीता, यह भय भारी है

इस से जननी की विनती है
और प्रार्थना मेरी है
मुक्ति-दान देने में जन को
क्यों होती अब देरी है

सजल नयन हरि बोले चूणा-
मणि को अपने वक्ष लगा
हनुमन, युग-युगजिओ, मिले तुम
जन्मान्तर का पुण्य जगा

मैं न उऋण हो सकता तुम तो
देवों के वरदान बने
मेरे प्राणों के रक्षक तुम
कपि-दल के अभिमान बने

पुरस्कार क्या दे सकता हूँ
आओ गले लगो साथी
मेरी प्रिया मुझे मिल जाये
ऐसा पुनः जगो साथी

कपि को खींच पुलक आँखें भर
गले लगाया राघव ने
तन-स्पर्श से हनूमान का
ज्ञान जगाया राघव ने

जन्म-जन्म के साधु तपस्वी
को जो ज्ञान नहीं मिलता
उसे सहज ही दिया; योग से
भी जो ध्यान नहीं मिलता

हनूमान के नयन खुले तो
हरि-चरणों में झुके गिरे
ज्योतिर्मय प्रत्यक्ष सामने
विविध राम के रूप फिरे

बाहर भीतर राम राम ही
राम-लीन कपि पुलक पुलक
लगे विनय करने कर जोड़े
गिरे नयन जल ढुलक ढुलक

जय रघुनायक जन-सुख दायक
विश्व-विधायक जय जय जय
जय जय एक अनेक रूप जय
जय उन्नायक जय जय जय

अस्ति-नास्ति के बीच विन्दु जय
प्राण सिन्धु जय, संगम जय
समाधान के बाद प्रश्न फिर
प्रश्नों में जड़-जंगम जय

मैं तुम के मायिक प्रपंच से
अलग खड़े अविनाशी जय
वनवासी का वृथा बहाना
घट-घट के अधिवासी जय

जय कारण जय कार्य सनातन
मन-वाणी से दूर कहीं
जय अरूप जय रूप भूप जय
तर्कों में मजबूर कहीं

देख रहा हूँ लक्ष-लक्ष में
राम जानकी की झाँकी
जय विराट, किस ब्रह्मलीन ने
यह सारी महिमा आँकी

हनूमान के साथ वानरों
ने भी जय जयकार किया
गिरि वन ने भी राम राम जय
का भारी उच्चार किया

राम राम जय राम राम जय
राम राम जय जय जय जय
राम राम जय राम राम जय
राम राम जय जय जय जय

शम्

—:o:—